IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# तुलसीदास के काव्य में लोकमंगल का विधान और उसकी वर्तमान कालिक प्रासंगिकता

**डॉ. सुरेन्द्र कुमार, सहायक प्रोफ़ेसर (हिन्दी)**

**राजकीय महाविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)**

**सारांश**

हिन्दी साहित्य की रामकाव्य परम्परा में ऐसे ही एक प्रख्यात कविकुल चूड़ामणि, भक्त शिरोमणि, मानवता के मूर्धन्य उपासक, हिन्दू संस्कृति और उसकी प्राचीन परम्पराओं के प्रबल समर्थक कवि गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हिन्दी जगत् में अद्भुत और चमत्कारपूर्ण घटना है। वे हिन्दी जगत् के सिरमौर, भक्तिकाल के आधार स्तम्भ और अपने युग के उद्धारक हैं। तुलसीदास इतिहास की विभिन्न विचारधाराओं के प्रतिनिधि थे। वे समन्वयवादी और समरस कवि थे। उन्होंने 'रामचतिमानस' के माध्यम से राष्ट्रीय संस्कृति और धर्म के पूर्ण रूप में चिरन्तन जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान की है। वे देशकाल के आदर्शों के परम अनुरागी हैं। वे कबीर की तरह खण्डन में विश्वास नहीं करते अपितु मण्डन के कर्ता हैं। उन्होंने अपने युग की आवश्यकता के अनुरूप आदर्श और मर्यादा के समन्वय के द्वारा विशृंखलित होती संस्कृति को पुनः संगठित करने का प्रयास किया। तुलसीदास ने जीवन के हर क्षेत्र में एक आदर्श की स्थापना की, जीवन–मूल्यों और नैतिक आचरण पर बल दिया ताकि चरमराती हुई सामाजिक व्यवस्था और मर्यादाओं को पुनर्स्थापित किया जा सके। इस प्रकार तुलसीदास के काव्य में कलियुग के पापों को नष्ट करने, लोक व परलोक में सुख देने, अज्ञान के अंधेरे को दूर करने तथा उदात्त मानवीय मूल्यों का उद्रेक करने की अद्भुत शक्ति है जिसके श्रवण और पठन मात्र से लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

**बीज शब्द** : जनजागरण, राजनीति का राम, प्रतिद्वंद्विता, श्रमजीवी, आख्यायिका, मर्यादाविहीन, मातृशक्ति।

**प्रस्तावना** – रामकाव्य परम्परा में वाल्मीकि रामायण हमारा आदि ग्रंथ है। इसकी ख्याति सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सर्वव्यापक है। यह चिरवन्दनीय और अतुलनीय महाकाव्य है। इस काव्य के नायक भगवान श्रीराम के व्यक्तित्व में कितनी महानता, ऐतिहासिकता, विराटता और अलौकिकता है, इसका अनुमान सहज ही 'रामायण' से लगाया जा सकता है। तदन्तर महर्षि वाल्मीकि की रामायण को आधार बनाकर अनेक साहित्यकारों ने अपने काव्य–कौशल का परिचय दिया। संस्कृत कवि जयदेव और कालिदास से लेकर हिन्दी कवि स्वयंभू, तुलसीदास, केशवदास, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने रामकाव्य परम्परा को नित नवीन आयाम प्रदान किए तथा वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु अपनी–अपनी कल्पना और कौशल से नए कलेवर में प्रस्तुत की। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को और अधिक विशाल, व्यावहारिक, तार्किक और युगानुरूप बनाया। प्राचीन संस्कृत काव्य से लेकर आजतक के हिन्दी काव्यों में राम के चरित्र को आधार बनाकर जितने भी महाकाव्य रचे गए, उन सब की आधारभूमि वाल्मीकि रामायण ही रही है। राम का चरित्र जितना उदात्त, विशाल और बहुआयामी है, उसने उतनी ही व्यापकता और अतल गहराई से सार्वभाषिक और सार्वदेशिक कवियों को प्रभावित

करते हुए रामकाव्य रचने के लिए प्रेरित किया है। अतः आज विश्व की प्रत्येक भाषा में रामकथा और रामकाव्य उपलब्ध है।

तदन्तर तुलसीदास का आविर्भाव साहित्य जगत् में एक चमत्कारपूर्ण घटना है। वे हिन्दी जगत् के सिरमौर, भक्तिकाल के आधार स्तम्भ और अपने युग के उद्धारक हैं। तुलसीदास ने अपने युग के समाज को घोर अनैतिक और भौतिक संकट के दौर से बाहर निकाला। तुलसीदास की रामराज्य की कल्पना का दूसरा नाम वर्गविहीन समाज था। उनका सन्देश सभी वर्गों के लोगों के लिए कल्याण का अद्वितीय सोपान बना था। उनकी बताई डगर पर चलकर न जाने कितनों का उद्धार हो गया और इस प्रकार तुलसी ने अपने माथे पर लगा शनीचर का कलंक धो डाला था। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी रचनाओं में जीवन के विविधतापूर्ण चित्र सरलता और सादगी के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। उन्होंने अपने काव्य में आदर्श समाज के मानक निर्धारित किए थे तथा मानव मात्र के लिए जीवन की मर्यादाएँ, व्यवहार–कुशलता की अपेक्षाएँ, राजनीतिक शुचिताएँ, सामान्य जन की आकांक्षाएँ आदि विस्तृत फलक पर चित्रित की थीं जिनकी वर्तमान सन्दर्भों में भी प्रसांगिकता बनी हुई है।

**समन्वयवादी विचारधारा** – तुलसीदास के अवतरण के लगभग 500 वर्ष बाद भी समाज जातीय वर्ण–व्यवस्था की संकीर्णताओं में जकड़ा हुआ है। साम्प्रदायिक सौहार्द और सामाजिक समरसता का अभाव है। आपसी विद्वेष और असहिष्णुता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मतभेद के साथ–साथ मनभेद भी बढ़ रहा है। ऐसी विषम परिस्थितियों में तुलसीदास की समन्वय और सद्भाव की विराट् चेष्टा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी 'मंगल भवन और अमंगल हारी' है। तुलसीदास इतिहास की विभिन्न विचारधाराओं के प्रतिनिधि थे। वे समन्वयवादी और समरस कवि थे और उनका यही समन्वय और समरसतावाद उनके काव्य में विविध रूपों में दिखाई पड़ता है। समन्वय उनके साहित्य का सार है तथा निर्गुण और सगुण का समन्वय, शैव, शाक्त और वैष्णव का समन्वय, कर्म, ज्ञान और भक्ति का समन्वय, धर्म और राजनीति का समन्वय, आदर्श और व्यवहार का समन्वय, लोक और शास्त्र का समन्वय, गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय उसके आधार हैं। तुलसीदास की इसी समन्वय भावना को इंगित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी कहा था– ''लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके क्योंकि भारतीय समाज में नाना प्रकार की विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनायें, जातियाँ, आचार, निष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है लोक और शास्त्र का समन्वय, गृहस्थी और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय है। रामचरित मानस शुरू से अंत तक समन्वय का काव्य है।''[1]

तुलसीदास सभी विचाराराओं, विविधताओं और विभिन्न पूजा–पद्धतियों का सम्मान करते हैं, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल देते हैं। तुलसी कबीर की तरह विद्रोह में विश्वास नहीं रखते अपितु वे विद्रोह करने वाले को विश्वास–योग्य बनाते हैं। इसलिए उनका काव्य समन्वय का सार और सौहार्द का पारावार है। विद्रोह तो उनके स्वभाव के प्रतिकूल है और वह मूढ़ता का पर्याय है –

**सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।**
**संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।**[2]
**भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।**[3]
**सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।**[4]

**जनजागरण का स्वर** – तुलसीदास की समन्वयवादी विचारधारा ने धर्म, समाज और जातीय गौरव की गिरती हुई दीवार को थामने का काम किया था। ''उन्होंने नाथपंथियों के प्रभाव से नष्ट होती हुई जनमानस की विश्वासमयी रागात्मिका वृत्तियों को रामभक्ति के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक जीवन के आदर्शों को जनता के सामने प्रस्तुत कर विश्रृंखलित हिन्दू समाज को केन्द्रित किया।''[5] उन्होंने जिस धर्म की प्रतिष्ठा की थी उसके आचरण में राम से बढ़कर पारंगत और कोई नहीं है। ''तुलसी ने जिस व्यापक धर्म का निर्देश दिया वह उनका कोई व्यक्तिगत धर्म नहीं था। वह प्राचीन भारत का सनातन धर्म ही है जो मनुष्य मात्र

के लिए सामान्य धर्म के नाम से अनादि काल से चला आ रहा है।''[6] अतः इस धर्म की महिमा और उसकी अलौकिकता में तुलसीदास की प्रबल आस्था थी। वे कलियुग के वाल्मीकि हैं। उन्होंने 'रामचतिमानस' के माध्यम से राष्ट्रीय संस्कृति और धर्म के पूर्ण रूप में चिरन्तन जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनका काम इस कलियुग में भारतभूमि का उद्धार करना था इसलिए उनके काव्य में सतयुग की–सी गरिमा है तथा कर्त्तव्य परायणता, सेवा, त्याग और संयम को मानव जीवन के आधार स्तम्भ के रूप में स्थापित किया है ताकि मनुष्य अपने गौरव की रक्षा की अभिलाषा तब तक सिंचित करता रहे जब तक वह फलित नहीं हो जाती।

तुलसीदास मानवीय करूणा, सामंजस्य, समन्वय, समरसता, सहृयता, आत्मबल, आस्था, आशा और विश्वास के कवि हैं जिनके रचना संसार में समूचे देश, जातीय अभिमान और युग को अभिव्यक्ति मिली है। उनके दीनबन्धु राम जनसाधारण को जगाने का काम करते हैं। तुलसी के साहित्य–सागर में जनजागरण का यह स्वर प्रखर रूप से मुखरित हुआ है। उनकी भक्ति लोकोन्मुखी है और उनके राम भक्त वत्सल हैं जो मनुज पहले और परब्रह्म बाद में हैं। वे देशकाल के आदर्शों के परम अनुरागी हैं। वे कबीर की तरह खण्डन में विश्वास नहीं करते अपितु मण्डन के कर्ता हैं। उनका साहित्य हिन्दू धर्म, सभ्यता और संस्कृति का अनमोल खजाना है, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय आदर्शों का कोश है तथा मिथ्याभिमान और अभिजात्य भावना का विरोधी है। उनका मर्यादा पुरुषोत्तम राम 'सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम्' की सुन्दरतम अभिव्यक्ति है लेकिन पिछले कुछ दशकों में हमने राम के द्वारा स्थापित मर्यादाओं, शील और समन्वय को भंग होते देखा है, युवा पीढ़ी को पथभ्रष्ट होते देखा है, सामाजिक और साम्प्रदायिक सद्भाव को पलिता लगते देखा है, राम की राजनीति को 'राजनीति का राम' बनते देखा है और राजनीति के निहित स्वार्थ के लिए हिन्दू धर्म की सहिष्णुता और उदारता के चरमोत्कर्ष को पतित होते देखा है। इस प्रकार विसंगतियों, विद्रुपतताओं, विडम्बनाओं और विरोधाभासों से भरे वर्तमान भारतीय जनमानस को तुलसी के काव्य में आशा की किरणें दिखाई देती है क्योंकि तुलसीदास मानवीय श्रेष्ठता की कसौटी जाति, धर्म या समुदाय को नहीं अपितु आचरण की श्रेष्ठता को मानते हैं। इसीलिए वे आचरण की शुद्धता और सात्विकता पर बल देते हैं। इस प्रकार भक्त कवि और लोकनायक तुलसीदास ने जातीय गौरव और आत्माभिमान का जो सन्देश दिया वह हताश, निराश और मृतप्राय जनमानस को नई संजीवनी प्रदान कर रहा है। यही कारण है कि तुलसी की रामकथा निर्धन की झोंपड़ी से लेकर राजप्रसाद तक समान रूप से समादृत है। वह वर्णाश्रम धर्म और वेदों का मार्ग दिखाती है तथा संस्कारहीन ब्राह्मणों और क्षत्रियों को फटकारती भी है जिससे जनवादी दृष्टिकोण को बल मिलता है –

**"अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान ।**
**तुलसी अति नीचे सुखद ऊख अन्न अरु पान।।"[7]**

**सामन्तवाद का विरोध –** तुलसीदास का किसी धर्म, जाति और वर्ण से विरोध नहीं है किन्तु वे हिन्दू गौरव और मानवीय मूल्यों के समर्थक हैं। उनका समन्वयवादी चिन्तन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। अकसर उन पर ब्राह्मणवाद को प्रतिष्ठापित करने का आरोप लगता है किन्तु ब्राह्मणवाद की प्रतिष्ठा करना उनका अभीष्ट नहीं था और न ही वे शूद्र और नारी की दासता के अभिलाषी थे। तुलसीदास की विचारधारा प्रगतिगामी है। वे सांस्कृतिक विरासत के संरक्षक थे। वे सामन्ती सोच का प्रतिकार करते थे। इसीलिए उन्होंने स्वजाति, धर्म, वर्ण, कुल ओर गौत्र का डटकर विरोध किया है –

**धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।**
**काहू की बेटीसों बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ।**
**तुलसी सरनाम गुलामु है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।**
**माँग कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबो को एकु न दैबे को दोऊ।।[8]**

तुलसीदास का यह स्वर ब्राह्मणवाद को चुनौती देने वाला, सामन्ती सोच का विरोधी और प्रगतिवादी है। तुलसीदास ने ब्राह्मण धर्म की मर्यादाओं को झूठी पड़ते हुए, ब्राह्मण को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए, छुआछूत के अभेद्य दुर्ग को ढहते हुए, अनाचार का नाश होते हुए, पतित और विषम समाज को पवित्र और

समरस होते हुए देखा था। उन्होंने कर्त्तव्यपरायणता, सेवा, संयम और त्याग को मानव जीवन के आधार माना है ताकि मनुष्य अपने गौरव की रक्षा की अभिलाषा तब तक सिंचित करता रहे जब तक वह फलित नहीं हो जाती।

आज का युग आपाधापी का युग है। इसमें अस्वस्थ प्रतिद्वंद्विता की भावना प्रबल होती जा रही है, 'बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया' वाली कहावत चरितार्थ होती दिखाई दे रही है, सम्बन्धों का ताना–बाना तार–तार हो रहा है, प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासन भंग हो रहा है, भाई–भतीजावाद चरम पर है, अनैतिक आचरण दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, हिंसा–हत्या और खून–खराबा आम बात है, बेरोजगारी चरम पर है, श्रमजीवी पिस रहा है, किसान आत्महत्या करने को विवश है, पूंजीवाद का नंगा नाच चल रहा है, 'खाली दिमाग शैतान का घर' बन गया है, देश की विरासत दाँव पर है, हर कदम पर घात–प्रतिघात और विश्वासघात है। तुलसीदास का निम्नलिखित कवित्त जैसे वर्तमान का ही मार्मिक चित्रण है –

**किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी, भाट,**
**चाकर, चपल, नट, चोर, चार, चेटकी।**
**पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,**
**अटत गहन–गन अहन अखेट की।।**
**ऊंचे नीचे करम धरम अधरम करि,**
**पेट ही को पचत बेंचत बेटा बेटकी।**
**खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,**
**बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।**
**जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,**
**कहैं एक एकन सों, 'कहाँ जाई, का करी?'**[9]

**आदर्श की स्थापना और नैतिकता पर बल** – तुलसीदास ने रामकथा के परम्परागत रूपों से हटकर अपने समय की परिस्थितियों, विचारधारा, लोकरुचि और तत्कालीन भारतीय वातावरण के अनुसार उसको एक नई मर्यादा, नया आदर्श तथा नई धार्मिक और नैतिक मान्यताओं का रूप प्रदान किया। उन्होंने अपने युग की आवश्यकता के अनुरूप आदर्श और मर्यादा के समन्वय के द्वारा विशृंखलित होती संस्कृति को पुनः संगठित करने का प्रयास किया। तुलसीदास ने जीवन के हर क्षेत्र में एक आदर्श की स्थापना की, जीवन–मूल्यों और नैतिक आचरण पर बल दिया ताकि चरमराती हुई सामाजिक व्यवस्था और मर्यादाओं को पुनर्स्थापित किया जा सके। यही कारण है कि उनका समूचा रामकाव्य जीवन की प्रत्येक स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदर्श और प्रेरणा का सम्बल बन सका है। वाल्मीकि रामायण के बाद साहित्य जगत् की इस सुदीर्घ परम्परा में तुलसीदास की 'रामचरितमानस' इसलिए भी भिन्न है कि उसमें भाव, विचार और कला का अद्‌भुत संतुलन देखने को मिलता है। उसमें राम का चरित्र भारतीय संस्कृति और जीवन के सर्वोत्तम मूल्यों और आदर्शों के प्रतीक के रूप में विकसित हुआ है।

तुलसीदास के समय तक राम विष्णु के अवतार के रूप में प्रतिष्ठापित हो चुके थे तथा भारतीय धर्म, दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र में ब्रह्म के पर्याय और प्रतीक बन चुके थे। यह विचार सबके मन में घर कर गया था कि संसार में जब–जब धर्म की हानि होती है तथा आसुरी वृत्तियाँ हावी होने लगती हैं तब–तब धर्म की रक्षार्थ और आसुरी वृत्तियों के नाश करने के लिए भगवान् अवतार धारण करते हैं–

**"जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।**
**तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।** "[10]

इसलिए तुलसीदास ने अपनी भक्ति भावना से प्रेरित होकर राम के चरित्र में जिस आदर्श और मर्यादा को लक्षित किया है वह राम के पूर्ण ब्रह्म होने का नैसर्गिक और अनिवार्य परिणाम है। तुलसीदास ने अपने काव्य में राम के लोकरक्षक रूप को ही चित्रित किया है। उसमें पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों, मर्यादाओं,

मान्यताओं और आदर्शों का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है कि तुलसीदास लोकनायक कवि सिद्ध हुए हैं। उनके काव्य के राम आदर्श राजा और आदर्श पुत्र, सीता आदर्श पत्नी, भरत–लक्ष्मण आदर्श भाई, हनुमान आदर्श सेवक तथा कौशल्या आदर्श माता के रूप में अवतरित हुई हैं। व्यक्ति से व्यक्ति के अन्तःसम्बन्धों का ऐसा सुन्दर और विराट्–व्यापक अंकन अन्य किसी रामकाव्य में शायद ही देखने को मिले। रामराज्य की कल्पना 'रामचरितमानस' को आदर्श काव्य तथा लोकमंगल की भावना से ओत–प्रोत सिद्ध करती है। उनका काव्य वास्तव में मर्यादावादी दृष्टि का उन्मेष तथा जीवन की समग्रता का काव्य है। वह उच्चकोटि के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और नैतिक तत्वों का सुन्दर समुच्चय है। तुलसीदास की यही विशेषता है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति के तत्वों को पूर्ण रूप से आत्मसात करके अपनी रामकथा को और अधिक उज्ज्वल और प्रासंगिक बनाया है। हिन्दुओं के धार्मिक सिद्धान्तों और उनकी संस्कृति का जितना संन्दर चित्रण उनके काव्य में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनके रामकाव्य की रचना का उद्देश्य ही भारतीय संस्कृति का जागरण है। उनके काव्य में भक्ति और दर्शन का सफल निरूपण मिलता है और व्यवहार, नीति, धर्म और ज्ञान के ऐसे वचन हैं जो 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' हैं। यह नैतिकता, मर्यादा और आदर्शों से अनुप्राणित है। तुलसीदास वर्णाश्रम धर्म के समर्थक हैं और इसी वर्ण–व्यवस्था और वेदों की नींव पर आदर्श समाज और रामराज्य की परिकल्पना करते हैं। वे सामाजिक सम्बन्धों में कदम–कदम पर मर्यादाओं की स्थापना करते दिखाई देते हैं क्योंकि मर्यादा और अनुशासन ही जीवन में समरसता के वाहक हैं। तुलसीदास ने राम के दिव्य और अलौकिक स्वरूप पर 'रामचरितमानस' जैसा दिव्य और अनोखा प्रासाद खड़ा किया है, वह न तो स्वकल्पित है और न किसी पौराणिक व लौकिक साधारण आख्यायिका का प्रकारान्तर है। इसकी मूल सामग्री उसी आदिकाल से ली गई है, जिसे चिरन्तन से श्रद्धा और भक्ति के साथ भारतवर्ष परम् आदर्श मानता आया है, जिससे हमारे मस्तिष्क को प्रकाश, हृदय को रस और आचरण को दृढ़ता प्राप्त हुई है। भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, धैर्य, क्षमा, अनासक्ति, पवित्रता, त्याग, उदारता, परोपकार, सहिष्णुता, सहयोग, दया आदि जीवनमूल्यों की प्रधानता रही है। इन सभी गुणों का आदर्श तुलसीदास के काव्य के पात्रों में मिलता है। वचन पालन के लिए दशरथ अपने प्राणप्रिय पुत्र राम को वन भेज देते हैं और फिर पुत्र–वियोग में वात्सल्य के वशीभूत प्राण त्याग देते हैं। तत्पश्चात् राम का राज सिंहासन छोड़कर वन में जाना तथा भरत द्वारा राजपाट को तृणवत् समझकर भ्रातृभक्ति का निर्वाह करना, सीता की सुख–भोगों से विरक्ति तथा पातिव्रत्य धर्म की उच्च मर्यादा का पालन, वात्सल्य–मूर्ति माता कौशल्या की सहृदयता और सहनशीलता आदि सभी कुछ भारतीय संस्कृति के अनुरूप हैं और वर्तमान की अभिलाषा, अपेक्षा, आकांक्षा और आवश्यकता की अभिव्यक्ति हैं।

**लोकमंगल की अवधारणा** – तुलसीदास का रचना संसार लोकरक्षक और लोकमंगल की अवधारणा पर आधारित है। उनकी कविता **'कीरति, भनित, भूति भल सोई, सुरसरि सम सब कह हित होई'** का मूलमंत्र है अर्थात् कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वहीं उत्तम है जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो। उनका काव्य मानवीय मूल्यों को जाग्रत करता है तथा उनको संरक्षित भी करता है। धर्म, राजनीति और साहित्य की एकमात्र कसौटी 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' है। यही कारण है कि तुलसीदास के काव्य में कलियुग के पापों को नष्ट करने, लोक व परलोक में सुख देने, अज्ञान के अंधेरे को दूर करने तथा उदात्त मानवीय मूल्यों का उद्रेक करने की अद्भुत शक्ति है जिसके श्रवण और पठन मात्र से लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। राम राज्य की स्थापना, लोक कल्याण की एषणा, आदर्श समाज की परिकल्पना, मर्यादित जीवन की अभिलाषा, समन्वय की भावना, सदाचरण पर बल, समरस समाज की स्थापना, मानवीय मूल्यों का उद्घाटन, सम्बन्धों की पवित्रता और प्रगाढ़ता तथा परमार्थ व त्याग जैसी लोकमंगल विधायिनी भावभूमि उनकी प्रत्येक पंक्ति में द्रष्टव्य है।

**रामराज्य की परिकल्पना** – राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की रामराज्य की परिकल्पना तुलसीदास की रामराज्य की अवधारणा पर अवस्थित है जो कि अभी तक दिवा–स्वप्न है। रामराज्य का सपना दिखाकर जनता को ठगना राजनेताओं के द्वारा किया जाने वाला भावनात्मक शोषण है। आज की राजनीति में केवल 'राज' रह गया है और 'नीति' विलुप्तप्राय है। धर्म राजनीति को सुमार्ग पर चलने का उपदेश देता था किन्तु वर्तमान में धर्म साध्य न होकर राजनीति के राजमहल पर चढ़ने का साधन मात्र है इसलिए धर्म की पवित्रता और गरिमा पतनोन्मुखी है। राजनीति के इस अमानवीय चरित्र की परख करते हुए तुलसीदास का स्पष्ट उद्घोष है – **'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी सो नृप अवस नरक अधिकारी'**। तुलसीदास ने 'परहित' को सबसे बड़ा धर्म और 'परपीड़ा' को

सबसे बड़ा अधर्म कहकर समाज में अन्याय और विषमता को समर्थन देने वालों को अधर्मी और पाप का भागी बनाया है। लोक कल्याण का यही विधान उनके काव्य की मूलभूत विशेषता है। तुलसी ने तो रामराज्य के बारे में कहा था कि –

**"दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।**
**सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।"[11]**

यह रामराज्य की आदर्श परिकल्पना है किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यथार्थ उसके प्रतिकूल है। जनता सभी प्रकार के कष्टों से त्रस्त है। रामराज्य के लक्षण दूर–दूर तक दिखाई नहीं देते। आपसी विद्वेष चरम पर है। सभी अधिकारों के प्रति सजग हैं किन्तु कर्त्तव्यों को भुला बैठे हैं। आदर्श शासन–व्यवस्था तथा धर्म और जातियों में परस्पर मेल–मिलाप का अभाव है। छद्म राष्ट्रवाद का बोलबाला है जिसकी आड़ लेकर राजनेताओं से लेकर उद्योगपतियों तक भारतमाता की अपार धन–सम्पदा का दोहन हो रहा है। सामाजिक सम्बन्ध गौण हैं। धन–संग्रह की भावना बलवती होती जा रही है। कलि की पहचान भूख, गरीबी और अकाल मृत्यु का नंगा नाच है–

**"कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।।"[12]**

मर्यादाविहीन समाज, बेरोजगारी, आर्थिक विपन्नता व विषमता, अनैतिक आचरण, भाई भतीजावाद, हिंसा–हत्या–आतंकवाद, शोषण, असहिष्णुता का वातावरण, भौतिकतावाद, कथनी और करनी का भेद, बड़ों का तिरस्कार, पद–लोलुपता, राजनीति और धर्म का अपराधीकरण, व्यभिचार आदि सर्वत्र व्याप्त है, मानवता त्रस्त है, मातृशक्ति खतरे में है और बहन–बेटियाँ असुरक्षित हैं। तुलसीदास ने अपने काव्य में विभिन्न प्रसंगों में इसका मार्मिक चित्रण किया है –

**"कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा।।**
**नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता।।"[13]**

तुलसी के काव्य का लोकमंगल का विधान जीवन के हर क्षेत्र में आदर्शों का स्थापित करता है। यही कारण था कि अनेक बार हमारी न्याय–व्यवस्था ने उनके रामकाव्य से मानक ग्रहण करते हुए अपने निर्णय दिए हैं। एक मामा द्वारा अपनी भांजी के साथ अश्लील हरकत करने पर जनवरी 2021 में भिलाई (छत्तीसगढ़) की फास्ट ट्रैक कोर्ट के माननीय न्यायाधीश ने 'रामचरितमानस' की निम्नलिखित सूक्ति को उद्धृत करते हुए उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई थी –

**"अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।**
**इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।।"[14]**

यह भी चिन्ता का विषय है कि अधिकांश जनता लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रयोग करने के प्रति उदासीन बनी हुई है। उनका मूलमंत्र 'कोउ नृप होय हमें का हानि' है और यह भारत की मिट्टी का मूल चरित्र सिद्ध करता है।

**तुलसीदास के काव्य की प्रासंगिकता –** तुलसीदास के यश का आधार उनके काव्य का हर युग में प्रासंगिक बने रहना है। उनका काव्य अपने देश के प्रति सोये हुए अभिमान को जगाता है। उसके प्रति सेवा, समर्पण और त्याग की भावना हमारी नसों में ऊर्जा का संचार करती है। 'भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भला लहिकै' भारतीय जनमानस को जातीय कुल गौरव तथा राष्ट्रीय अभिमान की दृढ़ ध्वजा ग्रहण करके मातृभूमि के प्रति सदा ऋणी बने रहने का संदेश देती है। उनका काव्य राष्ट्र के मनोबल को दृढ़तर करता है। उसमें कर्मरत रहने की प्रेरणा विद्यमान है। आलसियों के मूलमंत्र 'अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम, दास मलूका कह गए सबके दाता राम' को तुलसी का राम स्वीकार नहीं करता तथा वह कर्म के मर्म को सिद्ध करता है – 'सकल पदारथ हैं जग माहीं, कर्महीन नर पावत नाहीं'। तुलसीदास दलित गलित समाज में परिवर्तन के आकांक्षी हैं। साम्प्रदायिक चश्में से देखने वाले लोग 'मसीत में सोने वाले' तुलसीदास को अनदेखा कर देते हैं। यह विचारणीय है कि 'मसीत में सोने' का साहस तो कबीर भी नहीं दिखा पाए थे। उनकी राजनीति में 'राज' को पाकर 'नीति' को न त्यागने का संदेश है –

**"कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ।।**

**पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी।।"**[15]

तुलसी का मत है कि इस संसार में 'भांति–भांति के लोग' हैं लेकिन मत भिन्नता का सम्मान करते हुए 'हिल–मिल' चलने का आग्रह करते हैं। वे क्रोध का शमन करने और विनम्र बनने की सीख देते हैं। 'प्राण जाएं पर वचन न जाएं' का बीजमंत्र कथनी और करनी में सामंजस्य स्थापित करने, बड़ों की आज्ञा का पालन करने तथा एक–दूसरे के लिए त्याग करने का मार्ग प्रशस्त करता है। उनका काव्य 'स्वान्तः सुखाय' पर आधारित होते हुए भी लोक कल्याण की सिद्धि करने में पूर्णतः समर्थ है। तुलसीदास ने दो वर्ष की अथक काव्य–साधना से प्रणीत 'रामचरितमानस' में सारे निगमागम का निचौड़ भरकर शताब्दियों के बाद समाज के समक्ष एक नया आदर्श प्रस्तुत किया था जिसके कारण उसकी प्रासंगिकता हर युग में अक्षुण्ण बनी हुई है।

**निष्कर्ष** – ध्यातव्य है कि एक युगान्तर के बाद वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तुलसीदास की विविध काव्योक्तियों को आधार बनाकर नित नवीन विवाद उत्पन्न किए जा रहे हैं तथा उन पर अनेक प्रकार के आक्षेप लगाए जा रहे हैं जबकि आज के समाज में तुलसी से हजार गुणा नारी व जातीय विद्वेष की भावना फैली हुई है किन्तु विवादो से दूर रहते हुए इतना ही कहा जा सकता है कि इस पर एक अलग विमर्श हो सकता है। तथापि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आजकल उनकी प्रसंगानुसार कही गई कुछ पंक्तियों को उद्धृत करके इस महान कवि के कृतित्व और व्यक्तित्व को विवादों का केन्द्र बना दिया गया है। उनके काव्य में बहुत कुछ अच्छा है लेकिन हमारी दृष्टि केवल 'आधा गिलास खाली' देखने तक सीमित है। हम अच्छाइयों को भुलाकर बुराइयों का महिमामंडन करने के आदि बन गए हैं। इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि यदि हमें कहीं 'थोथा' दिखता है तो वह 'उड़ा देने की वस्तु' है और ग्रहण करने के लिए उसमें पर्याप्त 'सार' है।

**सन्दर्भ सूची –**


1. हिन्दी साहित्य की भूमिका – हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 233
2. रामचरितमानस – तुलसीदास, लंकाकाण्ड, चौपाई 2
3. वही, उत्तरकाण्ड, चौपाई 115
4. वही, बालकाण्ड, चौपाई 116
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास – (स.) डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 205
6. तुलसीदास और उनका युग–डॉ. राजपति त्रिपाठी, पृष्ठ 148
7. वैराग्य संदीपनी – तुलसीदास, दोहा 39
8. कवितावली : तुलसीदास, उत्तरकाण्ड, छन्द 100
9. वही, छन्द 96
10. रामचरितमानस – तुलसीदास, बालकाण्ड, चौपाई 121
11. वही, उत्तरकाण्ड, चौपाई 21
12. वही, चौपाई 101
13. वही, चौपाई 102
14. वही, किष्किन्धा काण्ड, चौपाई 9
15. वही, अयोध्याकांड, चौपाई 152